Impact Factor = 4.153, http://www.epitomejournals.com, Vol 4, Issue 7, July 2018, ISSN 2395-6968

Epitome : International Journal of Multidisciplinary Research

ISSN : 2395-6968

जगदीश गुप्त के 'शंबूक' का समतामूलक विद्रोह

डॉ. अरूण गंभीरे

विभाग अध्यक्ष एवं सहयोगी प्राध्यापक,

हिंदी विभाग, कर्मवीर मामासाहेब जगदाळे महाविद्यालय, वाशी

Email : arungambhire20@gmail.com

जगदीश गुप्त लिखित 'शंबूक' एक लघुकाव्य है। स्वयं गुप्त जी 'शंबूक'को खंडकाव्य न कहकर लघुकाव्य कहना उचित समझते हैं। उनके अनुसार ''शंबूक को मैं खंडकाव्य की जगह लघु काव्य कहना अधिक पंसद करुंगा। क्योंकि खंडकाव्य शब्द मेरे मन को किसी टूटी हुई वस्तु का बोध कराता है। लघुकाव्य शब्द भी सापेक्षिक है पर उससे यह बोध उत्पन्न नहीं होता।''[१] शंबूक मिथकीय काव्य है। इसमे शंबूक की कथा के माध्यम से आधुनिक भावबोध को अभिव्यक्ति प्रदान की है। अपने प्रास्ताविक कथन में स्वयं गुप्त जी इस बात की प्रतिष्ठापना करते हुए लिखते हैं। ''रक्त तिलक नामक अंश त्रेता के शंबूक को द्वापर के एकलव्य से जोडते हुए वर्तमान युग तक का संस्पर्श कर लेता है। जिसकी चेतना का मूल आधार ही मानवीय समता पर प्रतिष्ठित है।''[२] वस्तुत: गुप्त जी ने शंबूक की भावभूमि सन १९७० ई. में ही 'परावृत्त' नाम से कुछ कविताओं में बनाई थी। परंतु सन २०१० ई. के संस्काण से स्पष्ट है कि यह काव्य वर्तमान भाव-बोध को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। इसमें उन्होने प्राचीन कथाएँ और पौराणिक प्रसंगों को नयी अर्थवत्ता के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया था। अत:कहा जा सकता है कि उन्होंने शंबूक के माध्यम से वर्तमान में जी रहे हर एक शोषित व्यक्तित्व को न्याय प्रदान करने का प्रयास किया है। उन्होने सिर्फ उसे न्याय देने का प्रयास ही नहीं किया बल्कि अपने अस्तित्व के लिए विद्रोह करने के लिए भी उकसाया है।

शंबूक के विद्रोह के साथ-साथ उसके विवेक, सत्यनिष्ठ, स्वाभिमानी और स्त्री-वत्सल तथा कर्मनिष्ठ व्यक्तित्व को भी गुप्त जी ने प्रस्तुत काव्य में उभारा है। वे उसके व्यक्तित्व में सभी प्रकार के मानवीय मूल्यों को खेजते हैं। उनके अनुसार- ''वे मनुष्य को रुढिग्रस्त

चेतना से मुक्त, मानव मूल्यों के रुप स्वातंत्र्य के प्रति सजग अपने भीतर अरोपीत सामाजिक दायित्व का स्वत: अनुभव करनेवाला समाज को समस्त मानवता के हित में परिवर्तित करके नया रूप देने के लिए कृतसंकल्प, कुटिल स्वार्थ भावना से विरत मानव मात्र के प्रति स्वाभविक सह अनुभूति से युक्त संकीर्णताओं एंव कृत्रिम विभाजनों के प्रति क्षोभ का अनुभव करनेवाला हर मनुष्य को जन्मत:समान माननेवाला मानव व्यक्तित्व को उपेक्षित, निरर्थक और नगण्य सिद्ध करनेवाली किसी भी दैविक शक्ति या राजनैतिक सत्ता के आगे अनवतन मनुष्य की अंतरंग सदवृत्ति प्रति अस्थावान, प्रत्येक के स्वाभिमान के प्रति सजग दृढ एंव संगठित अंतकरण संयुक्त सक्रिय किंतु अपीडक सत्यनिष्ठ तथा विवेक संपन्न होगा।''[३]

प्रस्तुत काव्य में शंबूक की प्रखर तेजस्विता राम की महान गौरवमयी राजसी चेतना को आर-पार बेध जाती है। वह राम की नीति मर्यादा ही नहीं चारित्रिक महिमा को भी अच्छादित कर देती है। शंबूक की तर्कशीलता जीवन के उस पहलु को उदघाटित करती है। जिसकी उपेक्षा करने से राम का ब्रहमत्व एंव उनकी विराटता अपनी अर्थवत्ता खो देती है। वर्णव्यवस्था का मानवता विरोधी जड रूप अब किसी भी जागरुक तथा प्रगतिशील समाज दवारा स्वीकृत नहीं कराया जा सकता। कवि शंबूक को 'हरिजन' की अपेक्षा 'भूमिपुत्र' के रूप में प्रस्तुत करना अधिक श्रेयस्कर समझता है। वस्तुत: भक्ति आंदोलन की देन के रूप में हरिजन शब्द अच्छे अर्थ का द्योतक होते हुए भी मूलत: मध्यकालिन मनोवृत्ति का ही परिचायक है। अत: यहाँ सिर्फ शंबूक ही नहीं सारे मनुष्य भूमिपुत्र कहलाकर नयी सार्थकता पाने के अधिकारी हैं। इस काव्य में यह भाव कई स्थलों पर व्यक्त हुआ है। यही कवि की विचारधारा का केंद्रबिंदू है। शंबूक इन्ही भावों की अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए राम से प्रश्न पुछता है- ''राजसी मन पर तुम्हारे, स्वर्ण का ही राज्य,

भूमि पुत्रों का तुम्हें, अधिकार अब भी त्याज्य।''[४]

अर्थात आज भी ये भूमिपुत्र आदिवासी अपने अधिकारों से कोसों दूर हैं। इस संसार में जो-जो आहत और पीडित हुए, जिन्होंने मौन धारण किया उनका स्वर बनकर शंबूक उपस्थित है।

आदिवासी, पिछडे तथा ओ.बी.सी.ओं के कई प्रश्न हैं। इन प्रश्नों के उत्तर शासन के पास नहीं है। तब ये लोग अपनी भूख को मिटाने की लिए वाम मार्ग का इस्तेमाल करते हैं। इस संदर्भ में कवि लिखता है।

''ये बुरी करतूत में भी कम नहीं, है जहाँ झख मारते, मरते वही,
मद पिये, भवरे बने गजारते, भूल जाते, जीतते कब हारते,
यदि कोई इन्हे चढा दे सान पर, खेल जायें तुरंत अपने जान पर।''[५]

अदिवासी तथा शोषित लोग अपनी जठराग्नि को शांत करने के लिए बलिदान करने के लिए तक तत्पर हैं। तथा आम समाज के उद्धार के लिए सर्वस्व समर्पण देने को तैयार हैं। परंतु नगरवासी इन्हें हिरण और मछली के समान शिकार के योग्य मानकर इनसे अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं।

कवि प्रस्तुत काव्य में कई बुनियादी प्रश्नों को उठाता है। देश में विषमता, अन्याय-अत्याचार के साथ-साथ गरीबी ने भी भयावह रूप धारण किया है। इस अभावभरी जिंदगी को अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए वह लिखता है -

''यह विनय, नंगे बदन,
बनवासियों का देश, यह विजन,
मन मे मगन, बनवासियों का देस।''[६]

इसमें कवि प्रजातांत्रिक समाजवादी विचारधारा कायम करना चाहता है। इससे स्पष्ट है कि मनुष्यत्व से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। परंतु शासन स्तर पर यह व्यवस्था कायम नहीं हो सकती। अत: कवि शासन व्यवस्था की खिल्ली उडाते हुए वनदेवता के माध्यम से कहता है -

"सुना, फैली है तुम्हारी, योजनाओं तक योजनाएँ,
पर अगर सीमित रही, अयोजनों तक योजनाएँ,
यदि पहुँच पायी नहीं, भूखे जनों तक योजनाएँ,
पर्वतों, नदियों, पठारों, निर्जनों तक योजनाएँ।"[७]

उपर्युक्त काव्य पंक्तियों से स्पष्ट है कि कवि व्यवस्था की खूब पोल खोलता है।

प्रस्तुत काव्य में शंबूक और राम के बीच हुए संवाद बहुत ही मर्मस्पर्शी है। जिनसे समताबोध की प्रतिष्ठापना मिलती है। शंबूक शासन स्तर पर समता को व्यक्त कर उसे फटकारते हुए पूछता है।

"कौन शासक भूल अपनी मानता, सदा अपराधी प्रजा को जानता,
राम तुम राजा बने किस हेतु हो ? व्यष्टि और समष्टि मन के सेतु हो ?
शूद्र-घाती बने, करके क्रोध, क्या तुम्हारा यहि समता बोध ?"[८]

इससे स्पष्ट है कि शंबूक वर्तमान शासन-व्यवस्था के समता-बोध पर प्रश्नचिन्ह लगाता है। तथा आगे चलकर वह इंसानियत की स्थापना करने हेतु कर्म को श्रेष्ठता प्रदान करते हुए कहता है-

"वर्ण से होगा नहीं अब त्रण, कर्म से ही मनुज का कल्याण,
जन्म से निश्चित न होगा वर्ण, वर्ग तक सीमित न होगा स्वर्ण,
कर्म से ही श्रेष्ठता अधिकार, कर्म सबके लिए सम आधार।"[९]

इससे स्पष्ट है कि जन्म और वर्ण किसी की श्रेष्ठता के आधार नहीं बनेंगे। तो कर्म ही किसी की श्रेष्ठता का आधार होगा। इसमें समतामूलक विद्रोह ही झलकता है। आगे वह श्रम को प्रतिष्ठाप्राप्त करवाने हेतु कहता है -

"सहज समता हो सभी में व्याप्त, व्यवस्था के हेतु यह पर्याप्त,
भूमि पर फिर भूमि की संतान, करे शासन, श्रम बने श्रीमान।"[१०]

इससे स्पष्ट है कि अब भूमिपुत्र शासक भी बनेगा और श्रेष्ठ भी कहलाएगा।

प्रस्तुत काव्य का नायक शंबूक हर एक को अपना मार्ग प्रशस्त करने के लिए संघर्षरत मार्ग पर चलने के लिए उकसाता है तथा अपना विद्रोह भी प्रकट करता है। इस रूप को अभिव्यक्त करते हुए कवि कहता है -

"है विवेकी वही, जो जग के विषम व्यवहार में भी,
पथ बना ले, है समाज वही सुसंस्कृत,
जहाँ होता व्यक्ति का संमान, कर सकेगा वही,
मानव की समस्या का, सटी निदान।"[११]

उपर्युक्त विषय विवेचन के पश्चात संक्षेप में कहा जा सकता है कि शासन और सामाजिक स्तर पर कितनी ही विषमता क्यों न हो आज का मानव अपने कर्म और संघर्षरत अनुभव से अपना मार्ग प्रशस्त करेगा। इसमें शंबूक का समतामूलक विद्रोह पूर्णरुपेण झ ालकता है।

संदर्भ :-

१. जगदीश गुप्त - शंबूक, कवि कथन से, पृष्ठ - १२ - १३।

२. वहीं - वहीं, प्रस्तावना से, पृष्ठ - १४।

३. वहीं-वहीं, नई विचारधारा से पृष्ठ - १०।

४. वहीं - वहीं, पृष्ठ - ५९।

५. वहीं - वहीं, पृष्ठ - ३०।

६. वहीं - वहीं, पृष्ठ - ३२।

७. वहीं - वहीं, पृष्ठ - २९।

८. वहीं - वहीं, पृष्ठ - ५१।

९. वहीं - वहीं, पृष्ठ - ६२।

१०. वहीं - वहीं, पृष्ठ - ६८।

११. वहीं - वहीं, पृष्ठ - ९७।

आधार ग्रंथ :- जगदिश गुप्त - शंबूक (लघु काव्य)

लोकभरती प्रकाशन, इलाहाबाद - १

संस्करण - २०१०